VOL- X | ISSUE- I | JANUARY | 2023 | PEER REVIEW e-JOURNAL | IMPACT FACTOR 7.367 | ISSN 2349-638x

नीरजा माधव की कहानियों में स्त्री विमर्श

सुनील कुमार यादव (शोधछात्र)
हिंदी विभाग,
महाराजा सयाजीराव वि.वि. वडोदरा, गुजरात

प्रस्तावना –

हिंदी साहित्य में समय और समाज की आहट तथा करवट को पहचानते हुए , उनमें सार्थक संवादो को कायम रखना ,रचना और रचनाकार दोनों के लिए आवश्यक होता है । यह समाज जिन समानता - असमानता पर चल रहा है । यह तो सभी को दिखाई देता है । एक दूसरे से प्रतियोगिताओं से भरा यह समाज खुद आगे बढ़ने के एवज में किसी के साथ न्याय - अन्याय का कोई सरोकार नहीं रखना चाहता । साहित्य भी समाज की तरह ही होता है । साहित्य में स्त्री विमर्श भी एक ऐसी ही समानता व असमानता की अवधारणा पर चल रहा है । वह किसी तलवार कि धार पऱ चलने से कम नहीं हैं। 2020-21 मे राष्टपति रामनाथ कोविंद के हाथो सर्वोच्च महिला नागरिक सम्मान " नारी शक्ति पुरस्कार " प्राप्त, प्रख्यात प्रगतिवादी लेखिका नीरज माधव कि हमेशा यह चिंता रही हैं कि स्त्री विमर्श ने संघर्ष कर के जो स्थान हासिल किया हैं वह आगे भी सही दिशा मे चले। नीरजा जी अपनी रचनाओं मे यह बताती हैं कि भारतीय नारी के लिए पश्चातय नारी विमर्श उचित नहीं हैं जैसा कि भारतीय नारी विमर्श कि सही दिशा उनकी कहानियो मे दिखाई देती है।

लेख विवरण - पिछली शताब्दी में प्रारंभ हुए इस विमर्श में मूलरूप से एक ही बात प्रतीत होती है, कि नारी को समाज व परिवार में वह सम्मान मिले जिसकी वह हकदार है । वह ही निर्णय ले कि उसके लिए क्या सही है और क्या गलत । उसे शिक्षा, स्वास्थ्य व आर्थिक आधार पर सफल होने में अवसरों की एक समान प्राप्ति हो । स्त्री चिंतन की प्रसिद्ध लेखिका रेखा कस्तवार जी का विचार है कि, " स्त्री विमर्श स्त्री के जीवन के अनछुए अनजान पीड़ा जगत के उद्घाटन के अवसर उपलब्ध कराता है । परंतु उसका उद्देश्य साहित्य एवं जीवन में स्त्री के दोयम दर्जे की स्थिति पर आंसू बहाने और यथास्थिति बनाए रखने के स्थान पर उन कारकों की खोज से है जो स्त्री की इस स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं वह स्त्री के प्रति होने वाले शोषण के खिलाफ संघर्ष है।"[1]

स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए आज साहित्य व सामाजिक जीवन दोनों ही क्षेत्रों में अपनी मुक्त और राष्ट्रीय मुक्त के पक्ष में हिंदी साहित्य में स्त्री की आवाज मुखर होकर शायद पहली बार प्रकट हुई, हिंदी साहित्य की प्रथम कथाकार कही जाने वाली, बंग महिला ने बड़े साहस के साथ अपने साहित्य की कई विधाओं के माध्यम से मर्दवादी आंच में जलते हुए स्त्री जीवन की सभी समस्याओं की चर्चा की है । जिससे आज भी भारतीय नारी निरंतर संघर्ष कर रही है ।

स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य चाहे वह पुरुष लिखित हो या स्त्री लिखित उसमें अत्यंत सशक्त स्त्री विमर्श पाया जाता है । यह तो निर्विवाद तथ्य है कि भारतवर्ष में स्त्रियों की गिरी हुई दशा को देखकर उस पर चिंतन करने का प्रयास पुरुषों ने ही सबसे पहले किया । प्रेमचंद के कथा साहित्य से ही स्त्रियों पर चिंतन प्रारंभ हो गया था जो कि राजेंद्र यादव के संपादकत्व में पूर्ण प्रभुत्व के साथ साहित्य की सभी विधाओं में स्त्री विमर्श परिलक्षित होने लगा था । इसके बाद स्त्रियों में भी अपनी स्थिति को लेकर विद्रोह पनपने लगता है , आत्मनिर्भरता की प्रेरणा मिलने लगती है। और फिर साहित्य में ऐसा दौर आया कि, जब स्त्री संबंधी लेखन में स्त्री व पुरुष दोनों वर्ग बराबर लेखन करने लगे हैं । वर्तमान समय में स्त्री विमर्श पर लेखन पूर्णता स्त्रियों का अधिकार क्षेत्र हो गया हैं । और स्त्रियों का स्त्री विमर्श पर लेखन सत्यता के अधिक निकट होता हैं। वर्तमान समय में स्त्री विमर्श पर लेखन की समीक्षा करें, तो ऐसी स्थिति में आ गई है कि उसकी सुचिता पर सवाल उठने लगे हैं । वर्तमान समय की स्त्री के लेखन में नैतिकता को लेकर बहस चल पड़ी है कि स्त्रियों के लेखन में अब चिंतन से ज्यादा देहधारी लेखन तत्व आ गए हैं।

इस संबंध में निरजा माधव का विचार है कि " दुखद पक्ष यह है कि नारी मुक्ति आंदोलन को कपिपय झंडावरदार

स्त्रियों और आंदोलन की डोर अपने हाथ में रखने वाले मदारीनुमा पुरुषों ने मिलकर एक भटकाव वाले मार्ग पर डाल दिया है। ..... लोरियां सुनाने और बाहों में झूला झुलाने वाला भाई क्या शोषक होता है स्त्री का ? हर सुख दुख में सब कुछ ओढ़ लेने प्रेम का पाथेय लिए साथ चलने वाला जीवन साथी क्या हमेशा शोषक की ही भूमिका में दिखाई देता है ? यदि ऐसा होता तो युगों युगों से सुदृढ़ परिवार की इकाई लिए भारत राष्ट्र कब का छिन्न-भिन्न हो गया होता । स्त्रियों ने अपने प्रेम त्याग और समर्पण से ही घर को आज तक घर बनाए रखा। जिनकी नकल दूसरे देशों के लिए भी अब वरदान बनने जा रही है।"[2]

नीरजा माधव का यह वक्तव्य बताता है कि आजकल की स्त्री विमर्श के रचनाकार की रचनाओं में स्त्रियों के देहवादी विमर्श पर अधिक लिखा जा रहा है । इसमें पति पत्नी की व्यक्तिगत बातें , उनके बेडरूम की बातें, विवाहोत्तर अनैतिक संबंध या किसी चाचा, मौसा, फूफा , आदि द्वारा शारीरिक शोषण इन बातों के सिवा अन्य बातें गौण हो गई हैं । इनका कारण पाठक हो गए हैं । वे इन रचनाओं को बड़े चटखारे लेकर पड़ते हैं। जिससे इन रचनाओं की प्रतियां अधिक बिकती हैं, और रचना व रचनाकार को प्रसिद्धि मिल जाती है । इन बिकी हुई प्रतियों की प्रसिद्धि के आधार पर पुरस्कार भी मिल जाते हैं । जो कि सही नहीं है। स्त्री विमर्श लेखन पर नीरजा जी के विचार हैं कि , "विमर्श में हमेशा सही दिशा में ही लिखना चाहिए। जिस पितृसत्तात्मक विचार के खिलाफ जागरूक लेखन करना है, कहीं उसी नकारात्मक विचार को लेखन से बढ़ावा न मिल जाए। क्योंकि यही मर्दवादी विचार सभी के दिलों - दिमाग में सदियों से रचा बसा है । अतः दोनों में भेद करके सकारात्मक पक्षपर ही लेखन होना चाहिए। निरजा जी बताती है कि नारी सशक्तिकरण में नारियों को सिर्फ आगे ही नहीं आना पड़ेगा , बल्कि सही दिशा में सधे कदमों से चलना पड़ेगा । क्योंकि समाज के साथ ऐसा ही होता आया है, कि पुरुष वर्ग सभी अधिकारों को अपनाए हुए हैं , वह नारी को कोई भी अवसर बिना सही प्रयास के नहीं देना चाहता । पुरुष वर्ग की इसी बाजीगिरी के बारे में निरजा जी ने अपनी पुस्तक" हिंदी साहित्य का ओछल नारी इतिहास " के प्रतिपाद्य विषय पर एक प्रश्न के जवाब में बताया हैं कि " सन् 1857 ई. से सन् 1947 ई. तक का समय साहित्य और स्वतंत्रता आंदोलन की दृष्टि से एक अत्यंत महत्वपूर्ण कालखंड है । इस दौरान साहित्य , कला और संस्कृति के क्षेत्र में भारतीयों ने जो महत्वपूर्ण कार्य किए, उनमें स्त्रियों का योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं था। परंतु उस समय के इतिहासकारों ने नारियों के इस प्रयास को संभवतः जानबूझकर ओझल किया, उनकी इस उदासीनता के चलते और हिंदी साहित्य के इतिहास में एक बड़े शून्य को भरने का उद्देश्य लेकर बहुत पड़ताल करते हुए , अनेक नारी रचनाकारों को उनकी रचनाओं एवं इतिहासकारों द्वारा उनके साथ की गई बाजीगिरी के प्रमाण के साथ मैंने इस कृति को ग्रंथ का स्वरूप दिया है।" [3]

नीरजा जी की चिंता हमेशा से यह रही है कि बड़ी मुश्किल से जो प्रगति स्त्री के लेखन में हुई है, वह गलत दिशा में ना हो जाए क्योंकि जो सतत विकास करके स्त्रियों को आज अधिकार मिल रहे हैं । उसमें साहित्य का भी अमूल योगदान है । अतः स्त्री विमर्श लेखन में यदि स्त्री पुरुष दोनों में मर्दवादी सोच सदियों से समाई हुई है । उसके असर से नकारात्मक लेखन ना हो जाए , ऐसी नीरजा जी की चिंता है । कोई भी विचार, चिंतन तभी सार्वभौमिक रहेगा कि जब तक वह अपनी निश्चित मर्यादित सांचे में रहेगा । तब तक ही सकारात्मक विचार प्रसारित होते रहेंगे । नीरजा जी ने स्त्री विमर्श संबंधी अपने विचारों को अपनी कहानियों के पात्रों द्वारा प्रस्तुत किया है । उनकी कुछ कहानियों के संदर्भ का हम अवलोकन करेंगे ।

नीरजा जी के विचार अपनी कहानी " उष्ट्र उष्ट्र ही सही " में देखते हैं । इसमें नायिका विद्योत्तमा है । जो एक पढ़ी-लिखी कामकाजी महिला है। उसकी उम्र काफी हो गई है। परंतु उसे स्वयं के शादी के लिए कोई योग्य लड़का नहीं मिलता है । शादी की बात कई जगह चलने पर सभी लड़के विद्योत्तमा से कमतर ही साबित होते हैं । सभी रिश्ते पित्तृसत्तात्मक मानसिकता के थे । जबकि शिक्षित व समझदार आधुनिक विद्योतमा को प्राचीन कालीन मानसिकता वाले कालिदास स्वीकार नहीं थे । यह आधुनिक विद्योत्तमा है, प्राच्यकालीन सोचवाला कालिदास उसे बहका कर शादी तब तक नहीं कर सकता है, जब तक कि कालिदास विद्योत्तमा के योग्य ना हो जाए । विधोत्तमा की मानसिकता परंपरागत रीति रिवाजों विवाह आदि पितृसत्तात्मक संस्कृति से अलग जागरूक व सुशिक्षित कामकाजी महिला है। वह शादी करना आवश्यक नहीं मानती। वह अपनी पहचान

बनाना चाहती है । इस विद्योत्तमा से समाज जब प्रतियोगिता नहीं कर पाता है, तो उसे कार्यालय व परिवार के बीच में साजिश करके बदनाम करना चाहता है । और विद्योत्तमा की मनःस्थिति को लेखिका ने बड़ी ही कुशलता पूर्वक दर्शाया है जो कि आधुनिक समाज की महिलाओं की दशा को पूर्ण परिभाषित करता है।

नीरजा जी की कहानी" शीर्षक क्या दूं ? " में नायिका हरीतिमा है जो की पूर्णता भारतीय संस्कार युक्त एक घरेलू महिला है । उसकी एक दोस्त है सुदेशना जो कि लेखिका है । वह पाश्चात्य स्त्री विमर्श से पोषित है । इस कहानी के दोनों पात्र अलग-अलग धरातल के हैं । एक भारतीय विमर्श को व दूसरी पाश्चात्य विमर्श के विचारों को माननेवाली है। इन दोनों के तुलनात्मक रूप से नीरजा की यह कहानी अनुपम है । दोनों सभ्यताओं में समानता भी है और असमानता भी। भारतीय नारियों के चिंतन व पाश्चात्य नारियों के चिंतन की अवधारणा में कुछ अंतर परिलक्षित होते हैं कि पाश्चात्य नारियां अपने ऊपर कोई भी बंधन स्वीकार नहीं करती चाहे वह पत्नी या मां बनना ही क्यों ना हो, पाश्चात्य में लिंगवादी धारणा से परे रहना प्रमुख है । इस पर कृष्णा तँवरजी का विचार है कि " पश्चिम में स्त्री चिंतन की सुदीर्घ परंपरा रही है। अमेरिका जैसे देशों में भी स्त्रियों की दशा आरंभ से ही बिल्कुल पिछड़ी हुई थी

वह ना पुरुषों के समान गिनी जाती थी ना उसे किसी प्रकार का अधिकार ही प्राप्त था। जैवीय शास्त्र उसे कमजोर सिद्ध कर चूका था और बड़े बड़े ज्ञानी भी स्त्रियों को पुरुषों से नीचे स्तर के मानव के रूप में देखते थे यहां तक कि पोप भी स्त्री को नीचा स्थान दे रखा था। स्त्रियां लिंगवादी धारणा के अंतर्गत कमजोर व पिछड़ी हुई मानी जाती थी।"[4]

इसको परिलक्षित करने के लिए 'शीर्षक क्या दूं ? ' कहानी पूर्णतया सार्थक है। शादी व परिवार भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण अवयव हैं । परंतु पाश्चात्य स्त्री विमर्श में शादी के मायने अलग है , पाश्चात्य विचारों में शादी पर नायिका के विचार इस प्रकार हैं।" मैं तन के साथ-साथ मन आई मीन माइंड को भी किसी के साथ गिरवी रखने को तैयार न थी आखिर फेमिनिस्ट थीअरी को मैं लिखूं तो पर जी ना सकूं, यह कैसी विडंबना है।..... वह बच्चे होंगे तो लेखन में व्यवधान होगा ।फिर वैभव भी नहीं चाहते । हम दोनों के बीच एक अच्छी अंडरस्टैंडिंग है ।"[5] सुदेशना की यह बात सुनकर हरीतिमा विचलित हो जाती है। क्योंकि वह भारतीय सभ्यता की पक्षधर है । जबकि सुदेशना पाश्चात्य विचारों की है । उसके लिए घर परिवार समाज बच्चे सब बंधन है । इसी कहानी में निरजा जी अपने पुरुषपात्र के द्वारा स्त्री विमर्श में पुरुष के आदर्श पक्ष को भी स्पष्ट करती हैं, कि यदि स्त्री अपने पक्ष को पुरुष के सामने समझाए, तो हर पुरुष स्त्री को प्रतिद्वंदी नहीं समकक्ष ही मानेगा , भारतीय विचारों की पोषित नायिका हरीतिमा के पति का मानना हैँ कि कामकाजी पति भी कभी-कभी घर का काम कर सकता है। " ओफ तुम दोनों को तो संदेह की बीमारी सी लग गई है हमारे सहयोग को भी शक की ही दृष्टि से देखती हो। महीने में अट्ठाईस दिन तुम मुझे सहयोग करती हो तो क्या एक दिन भी हम करने लायक नहीं हैं । अरे हम लोगों की भी अब मानसिकता बदल रही है। तुम लोगों के साथ साथ।"[6]

इसी क्रम में अगली कहानी है हव्वा । इसमें नैना जो कि एक सरकारी ऑफिस में कार्य करती है। आधुनिक कामकाजी महिलाओं की होने वाली दिक्कतों और अन्य समस्याओं के प्रतिनिधित्व में नीरजा जी ने नैना को चुना है। नायिका समाज के बंधनों व पितृसत्तात्मक विचार से परेशान स्त्री चरित्र का प्रतिनिधित्व करती है । कहानी में नैना और नैना का पति दोनों नौकरी करने वाले हैं । उसका भरा पूरा परिवार है । उसके पति उसकी हर समस्याएं में साथ देने वाले है । नैना के ऑफिस में पति का दोस्त पवन है। जो नैना को ऑफिस की समस्याओं मे मदत करता हैं । नैना की मनोवृति समाज की सभी कामकाजी महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती है । इन्हीं समस्याओं पर कहानी में पवन नैना से कहता है कि..." नारी की इज्जत आईने की तरह होती है नैनाजी, जिस पर साफ-सुथरी अंगुलियों के भी निशान स्पष्ट हो जाते हैं । आप दिल से बेशक बहुत अच्छी हो नैनाजी पर इतनी सहज, मधुर भी मत बनिए कि लोग आपको बहुत सुलभ समझ लें ।"[7]

नीरजा जी की उपरोक्त पंक्तियां पित्रृसत्तात्मक व मर्दवादी सोच को परिभाषित करती हैं । समाज में रहने वाली नारियों की सामाजिक स्थिति कैसी है ? वह उपरोक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है। हजारों वर्षों से समाज व्यवस्था व धर्म व्यवस्था द्वारा स्त्री का हर पहलू से शोषण हो रहा है । उसका नतीजा मुक्त की राह पर स्त्री का चल पड़ना सही ही है । यदि पित्रृसत्ता, समाज में किसी नारी से प्रतियोगिता करती है, तो

उस स्त्री को पराजित करने के लिए, उसके हौसले को तोड़ने के लिए चरित्रहीनता का हथियार अपनाती है जिससे उस नारी की विश्वसनीयता समाप्त हो जाती है । और नारियों के लिए यह चरित्रहीनता का हथियार बहुत ही प्रचलित है। जिससे पुरुष वर्ग नारी को निरुत्तर कर देता है । " नहीं मुझे तुम पर पूरा विश्वास है । परंतु मैं भी तो समाज का एक अंग हूँ, मुझे भी अपनी बदनामी से डर लगता है । तुम अभी यंग हो नई - नई नौकरी में आई हो तुम्हारी ओर कोई भी आकृष्ट हो सकता है । नाकामयाब होने पर कुछ नहीं तो बदनाम तो कर ही सकता है । फिर एक लड़की के साथ नाम जोड़ना अक्सर पुरुषों को अंदर तक गुदगुदा जाता है ।"[8] यह कथन नैना के पति का है जो कि अपनी पत्नी को समझाते हुए कहता है कि यह समाज पुरुष प्रधान है । स्त्रियों का स्थान इस समाज में दूसरे दर्जे का है।

निष्कर्ष –

भारतीय समाज में स्त्री का नाम किसी पुरुष से जुड़ जाए तो , उसे स्त्री के साथ कलंक माना जाता है । वहीं पुरुषों के लिए किसी स्त्री के साथ नाम जोड़ना प्रतिष्ठा की तरह देखा जाता है । भारतीय समाज में चरित्रहीनता महिलाओं की ही होती है पुरुषो की नहीं , समाज में बेइज्जती महिलाओं ही होती है पुरुषों की नहीं ।स्पष्ट है कि पाश्चात्य के मुकाबले भारतीय विमर्श ही भारत के लिए उत्तम है । स्त्री विमर्श ने औरत को वस्तु से व्यक्ति बनने की समझ पैदा की है । स्त्री विमर्श से महिलाओं में जागरूकता के साथ-साथ स्वतंत्रता की इच्छा भी बलवती हुई है । उनमें अपने अधिकारों व अवसरों के लिए विशेष रूप से प्रयासरत रहने की अवधारणा मजबूती से बनती जा रही है। इस अवधारणा के निर्माण में साहित्य भी अपना योगदान दे रहा है इसमें कोई संदेह नहीं है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कस्तवार, रेखा, चिंतन की चुनौतियां ,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 25
2. डॉ. बृजबाला सिंह ,नीरजा माधव-सृजन के आयाम, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 11.
3. डॉ. बृजबाला सिंह ,नीरजा माधव-सृजन के आयाम, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 16
4. तँवर, कृष्णा, स्त्री विमर्श वैचारिक सरोकार और मृदुला गर्ग के उपन्यास, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 21
5. माधव, नीरजा, बाया पांडेपुर चौराहा , शीर्षक क्या लिखूं ?, आर्य प्रकाशन मंडल, नई दिल्ली, पृष्ठ 165
6. वही पृष्ठ 169
7. वही पृष्ठ 95
8. वही पृष्ट 93